अनेकता में एकता – धर्म के विशेष संदर्भ में

किरन
एसोसिएट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग
एस०एन० सेन बा०वि० पी०जी० कॉलेज, कानपुर
ईमेलः

Reference to this paper should be made as follows:

किरन

अनेकता में एकता – धर्म के विशेष संदर्भ में

RJPP Dec.22,
Vol. XX, Special Issue

pp.74-78
Article No. 12

Online available at *:*
https://anubooks.com/journal/rjpp

DOI:
http://doi.org/10.31995/rjpp.2022v20iS.12

अगर मानव जीवन का विश्लेषण किया जाए तो धर्म मानव जीवन के अभिन्न अंग अथवा अनिवार्य पहलू के रूप में उभर कर आता है। वस्तुतः धर्म का समावेश मनुष्य के आंतरिक जीवन में इस प्रकार हो चुका है कि बिना धर्म के मानवीय जीवन असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि के तीनों पक्षोंयथा बुद्धि, भावना एवं क्रिया का संबंध धर्म से भी है। धर्म ईश्वर के प्रति व्यक्ति की संपूर्ण प्रक्रिया है। धर्म में मानव अपनी बुद्धि अथवा विवेक के द्वारा ईश्वर के संबंध में खोज करता है, उसे अनुभव करता है और अपनी अनुभूतियों को वाह्य क्रियाओं के माध्यमक से अभिव्यक्त भी करता है।

इस प्रकार धर्म को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि ''धर्म मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावितत करने वाले वह व्यापक अभिवृति है जो सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र, सर्वज्ञ तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श और अलौकिक उपास्य के प्रति अखंड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और जो मनुष्य के दैनिक आचरण यथा पूजा पाठ जप–तप आदिवाह्य कर्मकाण्ड में अभिव्यक्ति होती है''।

किन्तु आज सम्पूर्ण मानव समाज विखंडित हो रहा है क्योंकि असमें आत्मबल उत्पन्न करनेवाला कोई नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक सूत्र दृष्टिगत नहीं हो रहा है जो पूरे समाज को एक सूत्र में बांधकर उसके दिव्य शक्ति स्वरूप को प्रतिबिंबित कर सके।

आज धर्म के व्याख्याताओं ने धर्म के मूल तत्व को, आध्यात्मिकता को, किनारे करके वाह्य कर्मकांड पर अधिक बल देते हुए सम्प्रदायगत पूजा पाठ के साथ जोड़कर धर्म को परिसीमित कर दिया है और मनुष्यों ने धर्म को सम्प्रदाय के रूप में स्वीकार करके अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग किया। अपने संस्थापकों के व्यक्तित्व के चहुंओर धूमने वाले धर्म व्यष्टि में संकुचित हो रहे है। परिणामस्वरूप धर्मो की विविधता अथवा अनेकता दृष्टिगत हो रही है और कर्मकांड की प्रधानता के कारण परस्पर वैमनस्यता का उदय हो रहा है। जबकि धर्म अपने मूल रूप में 'सर्वे भवंदु सुखिनः' के स्वरूप को धारण करता है और मानवीय जीवन के क्रियात्मक, ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक तीनों पक्षों का संतुलन स्थापित करता है।

वस्तुतः धर्म शब्द संस्कृत के 'धृ' धातु से निःस्त्रित है जिसका अर्थ है– धारण करना। तात्पर्य यह है कि धर्म उस भाव को व्यक्त करता है जिसके द्वारा संपूर्ण परात्मक जगत को धारण किया जाता है, व्यवस्थित किया जाता है, नियंत्रित किया जाता है। इसी अर्थ में धर्म आचरण अथवा नैतिकता के भाव को भी स्वयं में समेट लेता है।

धर्म का विकास भी मानव विकास के साथ–साथ होता रहा है। आदिकाल में जब सभ्यता का विकास नहीं हुआ था मानव प्राकृतिक शक्तियों यथा अग्नि, सूर्य, वर्षा, पृथ्वी, वायु इत्यादि की उपासना करता था और यह प्रारंभिक धर्म जीववाद, प्राणवाद फिटिशवाद, मानववाद एवं टोटेमवाद के रूप में मिलता है। इसे धर्म के क्रमशः विकास की श्रृंखलामाना जा सकता है। यद्यपि प्रारंभिक आदिम धर्म की अवस्था में अंधविश्वास एवं जादू का बोलबाला था, तर्क का कोई स्थान नहीं था, तथापि मानवीय वैमनस्यता का अभाव दिखाई देता था।

कालान्तर मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ धर्म के विकास क्रम में प्राकृतिक धर्म का उदय हुआ जो हिन्दू धर्म का रूप कहा जा सकता है। हिन्दू धर्म का आधार वेद, उपनिषद,

भगवद गीता, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत इत्यादि माने जाते हैं और इन सभी धर्मग्रन्थों में हिन्दू धर्म का केंन्द्रबिन्दु ईश्वर विचार ही है जिसमे ईश्वर को एक मात्र स्वतंत्र सत्ता स्वीकार किया है हिंदू धर्म ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनो रूप को स्वीकार करते हुए नैतिक व्यवस्थापक, उद्धारकर्ता, स्त्रषटा, पालनकर्ता, संहारकर्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दू धर्म में जहां उपासक के रूप में जीवात्मा को स्वीकार किया गया है वही उपास्य के रूप में ईश्वर को। साथ ही कर्म सिद्धांत को स्वीकार करने के कारण नियम के रूप में नैतिकता के क्षेत्र में कार्य करता है। साथ ही कर्म फल सिद्धांत की प्रामाणिकता के लिए पुनर्जन्म के सिद्धांत को भी हिन्दू धर्म में स्वीकार किया गया है।

हिन्दू धर्म के अपने विकास क्रम में बाह्मण ग्रंथ काल तक आते आते, देवाताअें की उपासना एवं विधि विधान का विशेष रूप दृष्टिगत होता है तथा तत्पश्चात औपनिषदिक काल में परम तत्व के संबंध में एक नई चिंतनधारा का सूत्रपात हुआ और एक दीर्धकालीन चिंतन, विवेचना तथा आध्यात्मिक विचार के सार संग्रह के रूप में मानव समाज के समक्ष, प्रस्तुत हुआ। कालान्तर वेद ब्राह्मण एवं उपनिषद् में व्यक्त विचारों के मिश्रण से आधुनिक काल में हिन्दू धर्म एक नए रूप में प्रकट हुआ जिसमें कर्म कांड व ज्ञानकांड समन्वित रूप था और उसी हिन्दू धर्म के अभिन्न रूप में हमें मीमांसामत, शैवमत वैष्णवमत भी दिखाई देते हैं।

हिन्दू धर्म में विचारित तात्विक प्रश्नों के विरोध में एक नए धर्म का उदय हुआ जिसके प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे और वह धर्म बौद्ध धर्म कहलाया। बौद्ध धर्म तात्विक प्रश्नों को महत्व न देकर मानवता का प्रश्रय देता है तथा मानव जीवन के दुःख पर विषद विवेचना करते हुए इस दुःख से निवृत्ति का मार्ग भी बताता है और इस प्रकार कहीं ना कहीं बौद्ध धर्म मानवतावाद को धर्म के रूप में स्थापित करता है। किन्तु खेद का विशय है कि बौद्ध धर्म जो कि ईश्वर पूजा को नहीं मानता वहां भी स्वयं बुद्ध को ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

बौद्ध धर्म के समानांतर ही जैन धर्म भी पुष्पित पल्लवित होता दिखाई देता है। जैन दर्शन में इन्द्रिय नियंत्रण पर बल देते हुए यह माना गया कि साधारण से साधारण मनुष्य भी उस परम तत्व को प्राप्त कर सकते है। जिससे सह शरीर देवत्व प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार सिख धर्म ने ईश्वर के मूल गुणों का विवेचन करते हुए यह बताया कि मनुष्य को प्राप्त ईश्वर का ज्ञान सीमित है क्योंकि स्वभावतः अपूर्ण मानव असीमित और अज्ञेय ईश्वर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। सिख धर्म ये भी मानता है कि ईश्वर अपने सच्चे साधक को जो सत्य की खोज कर रहा है, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता करता है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य का ज्ञान पृथक होता है तथापि अपनी प्रार्थना, ध्यान अथवा तपस्या के द्वारा ईश्वर के समीप स्थान प्राप्त किया जा सकता है।

पारसी धर्म ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हुए नैतिकता पर विशेष बल देता है और शुभ तथा अशुभ के दो नैतिक सिद्धांतो के संधर्ष का पारसी धर्म अपन चिंतन का केन्द्र बिन्दु बनाता है। परोपकार भी पारसी धर्म का सार है। साथ ही पारसी धर्म में ईमानदारीसु–व्यवहार, दया, प्रेम, सत्यवादिता इत्यादि नैतिक गुणों को धर्म माना गया।

पाश्चात्य जगत के इतिहास में यहूदी धर्म का एक विशेष स्थान है क्योंकि यहूदियों ने अपना सारा जीवन ईश्वर को अर्पित करके ईश्वर की खोजबीन में व्यतीत किया। यहूदि धर्म ये मानता है कि मनुष्य जाति की उत्पत्ति स्वयं से भिन्न किसी अन्य तत्व से हुई है। यहूदि धर्म मनुष्य की सीमितता को खुलकर स्वीकार करते हैं और मनुष्य से परे एक अन्य सत्ता को स्वीकार करते हैं। यहूदी धर्म नैतिकता को ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र मार्ग मानते हैं और साथ ही ईश्वर को व्यक्तित्व पूर्ण मानते हैं।

ईसाई धर्म यहूदी धर्म से ही उत्पन्न हुआ है और आज वर्तमान में पूरी दुनिया के सर्वाधिक देशों में विश्वसनीय धर्म के रूप में स्थापित है। ईसाई धर्म की ये मान्यता हैं कि ईश्वर मनुष्यरूपी भी है और उद्धारकरने वाला भी है। ईश्वर प्रेम करने वाले स्वभाव का है और वह समस्त प्राणियों से प्रेम करता है। ईश्वर सर्वोपरि है और सब का स्वामी है और अवतार धारण करता है। ईसाई धर्म शरीर की शुद्धि पर बल देते हैं क्योंकि वह भौतिकता को अशुभ मानते हैं।

ईस्लाम धर्म भी विश्व में विद्यमान प्रमुख धर्मो में से एक है। इस्लाम में ईश्वर के निर्गुण स्वरूप को स्वीकार किया गया है। कुरान ईश्वर को अल–कवि अर्थात महान अल–जबील अर्थात परम कांतिमान, अल–मसीह (ऐश्वर्ययुक्त), अल–अज़ीम (दिव्य), अल–जब्बार आदि कहा गया है। इस्लाम का ईश्वर परम पूर्णता से युक्त है और इस्लाम एक ईश्वर को मानता है जिसे अल्लाह नाम देता है।

ताओ धर्म लाओतसे के साथ 604 ईसा पूर्व विकसित हुआ। लाओतसे का अर्थ है–वृद्ध शिक्षक। ताओ का अर्थ मार्ग या पथ होता है और इस धर्म में पथ को ही अंतिम सत्य माना गया और यह पथ प्रत्यक्ष से परे है। इंद्रियातीत होने के कारण ताओ का विराट रूप यदि वह दिखा दे तो मनुष्य को दृष्टिगोचर हो सकता है। ताओ धर्म में ताओको विश्व मार्ग के रूप में परिभाषित किया गया है जिसका अनुगमन सभी को करना चाहिए।

चीन देश में कन्फ्यूशियस धर्म का अस्तित्व भी देखने को मिलता है जो यह विश्वास करते हैं कि स्वर्ग पृथ्वी पर संबंध बना रहता है और इसका आधार है– सर्वश्रेष्ठ पितर। इस विचारधारा के साथ ही साथ कन्फ्यूशियस धर्म स्वर्ग से अधिक पृथ्वी पर ध्यान केंद्रित करता है तात्पर्य है कि कहीं न कहीं वह आधुनिक मानवतावादी धर्म के समान प्रतीत होता है।

उपर्युक्त पारंपरिक धर्मो के साथ ही साथ कालान्तर अनेक धर्मगुरूओं जैसे श्री आनंदमूर्ति, स्वामी चिन्मयानन्द, ओशो, श्री श्री रविशंकर इत्यादि ने भी एक विशिष्ट प्रकार के धर्म की बात की है जो कि कहीं ना कहीं वैदिक धर्म के प्रतिबिंब के रूप में ग्राह्य है।

इस प्रकार विभिन्न संप्रदायों के धार्मिक विचारों की संक्षिप्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी धर्म उस परम शक्ति को चाहे किसी भी नाम से उद्धोषित करते हो और क्रियात्मक पक्ष में विभिन्नता रखते हैं। तथापि भावनात्मक एवं ज्ञानात्मक दृष्टि से सभी धर्मो में उस परमशक्ति, जो कि धर्म का मूल है, उसे एक सा ही स्वीकार करते है। वस्तुतः देखा जाए तो ये विभिन्न धर्म आध्यात्मिक धर्म के ही विविध प्रकार है और यह आध्यात्मिक धर्म धर्म की एक अत्यंत विकसित शाखा है। प्रोफेसर ली आध्यात्मिक धर्म को धर्म का सर्वथा नवीन रूप स्वीकार करते हैं और सम्पूर्ण आध्याक्मिक धर्म अपने विविधताओं के साथ भी यह स्वीकार करता है कि ईश्वर पारलौकि है, पूर्ण,

सर्वव्यापी तथा असीमित और इस तरह से देखा जाये तो ये धर्म एक विश्वव्यापी धर्म है जो केवल मानवीय बुद्धि को ही संतुष्ट नहीं करता बल्कि हृदय को भी संतुष्ट करता है क्योंकि ये मानव से परे एक उच्च शक्ति को आधार रूप में स्वीकार करता है और आध्यात्मिक शक्ति ईश्वर की उपासना करता है। किन्तु क्रियात्मक पक्ष की विभिन्नता पर बल देने के कारण सभी धर्म एक होते हुए भी मत विभिन्नता के कारण मतभेद उत्पन्न करने लगते हैं परिणामस्वरूप वैमनस्थ बढ़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट है सभी धर्म और दर्शन सत्य के उपासक हैं और साधनों अपनी बौद्धिक क्षमताओं तथा स्वभाव के अनुरूप प्रवृतियां अनुरूप सत्य ग्रहण करने की चेष्टा की है। जितना वे दे सकते थे किंतु कुछ ऐसा सर्वोत्कृष्ट है जो बौद्धिकता से भी अतीत है और वह अतीत तत्व ही वास्तविक सत्य है विश्व के सभी धर्मो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो भी भेदता द्वैतता मनुष्य के मध्य पाया जाता है उसका अस्तित्व मात्र सतही है क्योंकि आंतरिक गुणों के अन्वेषण में सभी धर्म तत्वतः एक ही है। धार्मिक क्रियाकलाप या अभिव्यक्ति के आधार पर अनेकता को स्वीकार करना मानवीय बुद्धि की संकीर्णता है जिसका लाभ कुछ स्वार्थी तत्वों ने उठाया है। किन्तु वास्तविक धर्म नामक तत्व पर कोई हस्तक्षेप नहीं हो पाया क्योंकि धर्म तो एक नित्य और सार्वभौमिक वस्तु है। धर्म किसी स्थान विशेष में सीमित न रहकर सभी में सामान्य रूप से निहित रहता है क्योकिं धर्म वस्तुतः तमाम सद्गुणो से युक्त है और यथार्य रूप में सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, स्तेय, ब्रह्मचर्य, सहानुभूति, प्रेम और भातष्त्व की भावना ही ऐसा नित्यधर्म है जिसका अनुपालन सभी धर्मानुयायी निःसांकोच रूप से करते है और ये सभी भावनाएं हमारी नैतिकता को पुष्ट करती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं की धार्मिक हुए बिना नैतिक हुआ जा सकता है, किन्तु बिना नैतिकता के धार्मिकता संभव नहीं है। वस्तुतः मानव जाति, समाज एवं राष्ट्र विश्व बंधुत्व और वसुधैव कुटुंबकम की भावना पर ही धर्म को स्वीकार कर सकता है। निःसंदेह जब धर्म का आधार विश्व बंधुत्व होगा तो चिंतन बदलेगा। चिंतन बदलने से मानव हृदय में परिवर्तन होगा जिसके परिणामस्वरूप समाज में व्याप्त तमाम कुरीतियां, विचार, अराजकता, भ्रष्टाचार, अत्याचार की समाप्ति होगी और मानव प्रेम प्रगाढ़ होगा। सर्व धर्म समभाव जाग्रत होगा और तभी मानव वास्तव में मानव के रूप में पूर्णतः विकसित हो जाएगा और धर्म अपने मूल रूप में, वास्तविक अर्थ में स्थापित होगा।

संदर्भ

1. मसीह, याकूब. तुलनात्मक धर्म दर्शन.
2. शर्मा, तुलसीराम. धर्म का अद्भव एवं विकास.
3. भाष्य, सायण. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद संहिता. गीताप्रेसः गोरखपुर.
4. दास, डॉ0 भगवान. सभी धर्मो की एकता. चौखमबा प्रकाशनः वाराणसी.